मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 4, अंक 68, सितम्बर(प्रथम), 2019

डी एम मिश्र: जनधर्मी तेवर के प्रतिनिधि- ग़ज़लकार

हरे राम " समीप"

कभी लौ का इधर जाना , कभी लौ का उधर जाना
दिये का खेल है तूफ़ान से अक्सर गुज़र जाना

डी एम मिश्र जनधर्मी तेवर की ग़ज़लों के चर्चित रचनाकार हैं।उनकी ख्याति एक प्रखर ग़ज़लकार के रूप में है तथा उन्हें शलभ श्रीरामसिंह, अदम गोंडवी,रामकुमार कृषक आदि की जनधर्मी परम्परा का ग़ज़लकार माना जाता है। यहां हम इस ग़ज़लकार के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक नजर डालेंगे।

डी एम मिश्र का जन्म 15 अक्तूबर, 1950 को ग्राम मरखापुर, पोस्ट बिझूरी, जिला सुल्तानपुर उ.प्र. में हुआ । उनके पिता का नाम स्व०रामपति मिश्र तथा माता का नाम स्व०रघुराजी कुंवर था। अपने बारे में स्वयं डी एम मिश्र ने बताया है,"उस समय मात्र कुछ महीनों का था, जब मेरे पिता का साया मेरे सर से उठ गया। मेरे पिता रामपति मिश्र भारतीय सेना में सिगनलमैन के पद पर तैनात थे। पाकिस्तान से सटी देश की सीमा पर लड़ते हुए पहले वह जख़्मी हुए और फिर शहीद हो गये। उस समय उनकी आयु मात्र 27 वर्ष की रही होगी। मेरा बचपन बड़ी कठिनाइयों और आर्थिक तंगी में बीता। पिता के देहान्त के बाद सरकार की तरफ़ से जो थोड़ी-बहुत पारिवारिक पेन्शन मिलती और कुछ अपनी खेती-बाड़ी से हो जाता, उससे मेरी माँ का, मेरा , और मेरी बहन का भरण-पोषण होता। शुरुआती शिक्षा गाँव की पाठशाला में आम के पेड़ के नीचे हुई । बाद में राजकीय विद्यालय, सुलतानपुर से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात मैंने लखनऊ विश्वविद्यालय में दाख़िला लिया। छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर और स्कालरशिप से होने वाली आय से मैंने अपनी , माँ और बहन की जरूरतें पूरी करते हुए अपनी शिक्षा पूर्ण की और पीएच ०डी ० की उपाधि प्राप्त की । थोड़े दिनों के बाद मुझे गाज़ियाबाद के एम ०एम ०एच ० पोस्ट ग्रेजुएट कालेज में प्रवक्ता की नौकरी मिल गयी । लेकिन अपने

गाँव-घर से दूर रहना मुझे पसन्द नहीं था । नतीज़न मैं इस कोशिश में लगा रहा कि जैसे ही कोई दूसरी नौकरी मिल जाय, जिससे कि मैं अपने गाँव में भी रह लूँ और नौकरी भी कर लूँ तो इसे छोड़ दूँ। थोड़े ही दिन में मुझे बैंक में नौकरी मिल गयी और मैंने कालेज की नौकरी छोड़ दी। फिलहाल मैं बैंक से भी सेवानिवृत्त हो चुका हूँ और अपने परिवार के साथ सुल्तानपुर में रह रहा हूँ और स्वतंत्र लेखन में लगा हूँ।कविता और संगीत के प्रति मेरा रुझान बचपन से ही था । जब मैं दर्जा चार में पढ़ता था, तभी मैं घर में रखा तुलसी का 'रामचरितमानस 'पढ़ गया था । कई दोहे-चौपाई भी कंठस्थ हो गये थे , जिन्हें खूब मन से गाया करता और लोगों को भी सुनाया करता । सुनने वाले जब मेरी तारीफ़ करते तो मेरा हौसला और बढ़ जाता। धीरे-धीरे मेरे मन में यह बात घर करने लगी कि मैं भी लिखूँ। मेरी कोशिश जारी रही। टूटी - फूटी अपनी भाषा में कुछ लिखने में मज़ा आने लगा था। कवि-सम्मेलनों को सुनने दूर -दूर तक जाने लगा था । हाईस्कूल के बाद कालेज की मैगजीन में मेरी कविताओं को स्थान मिलने लगा। कालेज के बाहर मेरा पहला गीत आगरा से निकलने वाली पत्रिका " युवक " में 1968 में छपा । शुरुआती दौर में कविसम्मेलनों का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा और मैं गीत की तरफ़ मुड़ गया । उम्र के लिहाज़ से मैं तुकबन्दी भी करता रहा । पाठ्यक्रम की कविताओं को पढ़ते हुए मुझे कविता की सार्थकता और उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी का भी एहसास होने लगा और मैने मुक्त छंद की कविताएँ लिखनी शुरू कर दीं। लेकिन फिर मुझे महसूस हुआ कि इस बाज़ारवादी दौर में जड़ग्रस्त समय और समाज को झकझोरने के लिए, उनमें हलचल पैदा करने के लिए ग़ज़ल ही सबसे ज़रूरी विधा है। इसी ज़रूरत के तहत मैं ग़ज़ल की ओर केन्द्रित हुआ।"

डी एम मिश्र की काव्य-यात्रा में उनकी कविता की छः और ग़ज़ल की तीन पुस्तकें - उजाले का सफर 2006, रोशनी का कारवाँ 2012 तथा आईना-दर-आईना वर्ष 2016 प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें अनेक पुरस्कार व सम्मान मिले हैं, जिनमें प्रमुख-जायसी पंचशती सम्मान, दीपशिखा सम्मान, लोकरत्न सम्मान , साहित्य रथी सम्मान , भारती-भूषण सम्मान,फिराक गोरखुपरी एवार्ड तथा उत्तर प्रदेश प्रेस -क्लब द्वारा सृजन सम्मान हैं।

आईना-दर-आईना उनका सर्वाधिक चर्चित गज़ल संग्रह है,जिसमें उनकी अनेक उल्लेखनीय ग़ज़लें संग्रहीत हैं। कथाकार संजीव ने इन ग़ज़लों का चयन किया, इसका शीर्षक दिया और पुस्तक की भूमिका भी लिखी है। संजीव जी के अलावा अन्य अनेक विद्वानों ने इस संग्रह पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, जिनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ताकि उनकी गजलियत को और उनके काव्य व्यक्तित्व को तनिक विस्तार से समझा जा सके-

कथाकार संजीव पुस्तक की भूमिका में कहते हैं कि " श्री मिश्र बुनियादी रूप से परिवर्तन और आक्रोश के शायर हैं सो उन्हें बड़ी आसानी से दुष्यन्त, अदम गोंडवी, रामकुमार कृषक, शलभ, आदि के कुनबे में रखा जा सकता है। पर, कभी-कभी उनकी ग़ज़लों में- रवानगी और उदात्तता उर्दू के मेजर शायरों के आसपास लहरा उठती है, वहाँ वे मीर हैं, ग़ालिब हैं, मख़दूम हैं। कुछ लोग कहते हैं, हिन्दी ग़ज़ल दुष्यन्त और अदम से आगे निकल गयी है तो कुछ कहते हैं आज की ग़ज़ल में निहित राजनीतिक व्यंग्य के कारण उसके इतिवृत्तामक हो जाने का ख़तरा पैदा हो गया है, कुछ और हैं जो कहते हैं ग़ज़ल एक शास्त्रीय विधा है सो उसकी पाकीज़गी हर क़ीमत पर बनाए रखी जानी चाहिए। श्री मिश्र की ग़ज़लें वैसी किसी भी बंदिश को नही मानतीं, और आख़िरी निकष जनता को मानती हैं, कारण ग़ज़ल का वजूद जनता के चलते है न कि शुद्धतावादी आलोचकों के चलते।" कथाकार संजीव डी एम मिश्र की ग़ज़लों को हिन्दुस्तानी ग़ज़लें कहते हैं। वे इनकी ग़ज़लों को हिन्दी-उर्दू की उस परम्परा में देखते हैं, जिसकी बुनियाद जुड़वा जमीन है अर्थात साझी संस्कृति की जमीन। डी एममिश्र की ग़ज़लों में मौजूदा सियासत के प्रति गहरे नफरत के भाव हैं।

प्रोफेसर विजयबहादुर सिंह ने लिखा है "डी एम मिश्र की ग़ज़लें मैंने देखी हैं। उर्दू की बहरें इनसे सधी हैं और कभी-कभी तो ज़ुबान ऐसी लगी कि कहें ये रेख़्ता के पास जाकर गुफ़्तगू करने लगी हैं। सच यही है कि यह हिन्दी की ग़ज़लें हैं, जिनमें हिन्दी की बोलचाल, मुहाबरेदानी और सोच-शैली का असर है। कहीं - कहीं दोनों का साथ भी अच्छा लगा - आसपास के जीवन की गतिविधियों , सोच की दिशाओं , नयी - पुरानी पीढ़ी के विचार -भेद और समय के चेहरे को यहाँ एक सामान्य निगाह से पकड़ा और दर्ज़ किया गया है। ऐसा लगता है आपका शायर अपने चतुर्दिक के प्रति बासजग है।"

दीपनारायण ठाकुर का मत है कि " इस ग़ज़ल-संग्रह से गुज़रते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ये ग़ज़लें मन और प्राण से लिखी गई हैं और ग़ज़लगो जिन भावों की गहराई , भाषा की सादगी , सफाई की बात करते हैं उसका संग्रह में निर्वाह हुआ है । ग़ज़लकार को ग़ज़ल कहने का शऊर हासिल है , यहाँ ग़ज़ल का मिज़ाज मौज़ूद है और अशआर अपने फ़ार्म और तक़नीकी पहलुओं से संपूर्ण हैं एवं ग़ज़लकार ने अपनी ग़ज़लों को जहाँ-जहाँ हिन्दी का मुहावरा दिया है , वहाँ समकालीन यथार्थ का मंज़र उपस्थित हुआ है । वहाँ ग़ज़लें रिवायती-रूमानीयत से हटकर विसंगतियों को उघाड़ने में क़ामयाब हुई हैं ; वहाँ ये ग़ज़लें समय का सच हो गई हैं।

ग़ज़ल-संग्रह 'आईना-दर-आईना' में वर्तमान सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता तथा सामाजिक जीवन का बोध है एवं उसमें समाज की राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का

प्रस्तुतिकरण हुआ है । नागरिक जीवन की कठिनाइयों का भी चित्रण ग़ज़ल - संग्रह की ग़ज़लों में सफलता के साथ किया गया है । निष्कर्ष यह कि समाज की बहुविध समस्याओं के प्रति पुस्तक के ग़ज़लकार सजग हैं और उन्हें अपनी ग़ज़लों में भी कलात्मक अभिव्यक्ति दे रहे श्री डी एम मिश्र का ग़ज़ल-संग्रह 'आईना-दर-आईना' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि आमतौर पर साहित्य में हम वास्तविक जीवन के विभिन्न आयाम तलाश करते हैं जहाँ कहीं भी हमें ऐसा महसूस होता है कि यहाँ शायद हमारे भीतर या आस-पास की बातें कही गयी हैं , तो हम स्वयं को ऐसे साहित्य से बहुत जुड़ा हुआ महसूस करते हैं । ग़ज़ल-संग्रह ' आईना-दर-आईना ' इस हक़ीक़त को और भी तीव्र ढंग से विस्थापित करने की सार्थक सोच है । हमारे आसपास की घटनाओं एवं विसंगतियों पर आधारित कुल 109 ग़ज़लों का यह ग़ज़ल-संग्रह है। 'आईना-दर-आईना ' ग़ज़ल संग्रह के अध्ययनोपरांत यह बात एकदम स्पष्ट है ग़ज़लकार ने मानवीय परिवेश की संवेदना को केंद्र बिन्दु बनाया है । डी एम मिश्र जी ने मानवीय परिवेश के उत्पीड़न को अपनी लेखनी द्वारा कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है कि कोई भी संवेदनशील व्यक्ति उद्वेलित हुए बिना नहीं रह सकता । ० ० ०वास्तव में ग़ज़लकार की ग़ज़लें संयत आक्रोश , मुखर प्रतिपक्ष , गहन संवेदनशीलता और सुनियोजित चिंतन से ओतप्रोत हैं । मानवीय परिवेश के जीवन-संघर्ष की पड़ताल करते हुए ग़ज़लकार में सीधे-साधे मासूम जनों के प्रति गहरा विश्वास और लगाव बार-बार परिलक्षित होता है ।

इन ग़ज़लों में मानवीय अवसाद, आशा-आकांक्षा का इतिहास तो है ही , इस सबसे बढ़ कर इन ग़ज़लों में वहाँ का समाजशास्त्र भी झांक-झांक जाता है । इन ग़ज़लों में अभिव्यक्ति के सभी अवरोधक तोड़कर , कला और रस के कवच को उतार फेंक कथ्य और वस्तु की अद्वितीयता को लेकर आगे बढने की प्रवृत्ति नोट की जा सकती है तो दूसरी ओर इसमें जीवन की यथास्थितिशीलता की ग़ज़लें हैं । ये ग़ज़लें इस सत्य को बार-बार दुहराती हैं कि संसार मर्त्य है , जीवन क्षणिक है । दुःख जीवन में सहने की ताक़त देता है ० । मनुष्य को मांजता है , मानवीय बनाता है। श्री मिश्र जीवन के अनुभवों को तात्कालिक घटना-संदर्भों के साथ न जोड़कर उन्हें रचना के व्यापक तत्वदर्शी फ़लक पर उतारने का यत्न करते है और 'मनुष्य' को सदैव 'ग़ज़ल' के केंद्र में रखते हैं। वृक्षों, फूलों, चिड़ियों, तितलियों, नदियों, झरनों जैसे बिम्ब-प्रतीकों के बहाने वे मनुष्य की प्रकृति का निरूपण करते हैं।

सालों की साधना के बाद जब किसी ग़ज़लकार की ग़ज़लों का मुज़म्मा छप कर आता है तो उसे सरसरी निग़ाह से नहीं देखा जा सकता । 'दो शब्द के बहाने' अपनी भूमिका में विख्यात साहित्यकार एवं कथाकार संजीव जी ने ग़ज़लकार के असरात का ख़ुलासा भी किया है, जो इन

ग़ज़लों को समझने के लिए इतनी मदद तो ज़रूर करता है कि इन ग़ज़लों के उत्स और उनके प्रेरणास्रोत ख़ोजे जा सकें !''

रामकुमार कृषक ने लिखा है '' 'आईना-दर-आईना' की ग़ज़लों को एक साथ पढ़कर ही मैंने डी एम मिश्र को आज के पुख्ता ग़ज़लकार के रूप में जाना। वे अपने देशकाल की गहरी पहचान रखनेवाले कवि हैं। उनकी ग़ज़लों में वह सभी कुछ है, जिसे हिंदी ग़ज़ल की समकालीनता माना जाता है। मिश्र जी के यहां सहज बोलती हुई भाषा, कथ्य को धारदार बनानेवाला शिल्प और जन-सरोकारों के साथ सुस्पष्ट भागीदारी को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। वंचित वर्ग की पक्षधरता वहां एक मूल्य की तरह है। यहां ख़ंजर और खून के रिश्ते में मौजूद सदियां बेशक अदृश्य हैं, लेकिन जुल्मों की उपस्थिति अदृश्य नहीं है। ''

कौशल किशोर ने बताया कि '' डी एम मिश्र ने अपने काव्य लेखन की शुरुआत छंदमुक्त कविता से की थी। लेकिन समाज में मची हलचल को अभिव्यक्त करने तथा लोगों तक अपनी बात पहुंचाने के क्रम में छंद और लय की तरफ वे गये। गीतों की रचना की, ग़ज़लें लिखीं। लोगों ने सराहा, उससे ऊर्जा मिली। डी एम मिश्र की कविता की पहली किताब 27 साल पहले 'आदमी की मुहर' आई थी। अब 'आईना-दर-आईना' नौवां ग़ज़ल संग्रह सामने आया है। इसमें उनकी 109 ग़ज़लें शामिल हैं। डी एम मिश्र हिन्दी ग़ज़लों की उस परम्परा से जुड़ते हैं जो दुष्यन्त कुमार, अदम गोण्डवी, शलभ श्रीराम सिंह से आगे बढ़ी। इनकी कविताएं प्रेम, करुणा के साथ प्रतिरोध और अन्याय के प्रतिकार को स्वर देती है तथा व्यवस्था की विद्रूपता को उदघाटित करती है। यह ऐसा आईना निर्मित करती है जिसमें आवेग व त्वरा है जिसमें हम अपने को देख सकते हैं, अपने समय और बदलते दौर को देख सकते हैं। हमारा लोकतंत्र किस तरह लूटतंत्र में तब्दील हो गया है, आम आदमी तबाह बर्बाद किया जा रहा है इस सच्चाई को सामने लाती है।यह आईना व्यवस्था की तह तक जाता है, क्या हालत हो गई है आम आदमी की, इसे बयां करता है। मौजूदा सियासत के प्रति इनकी ग़जलों में गहरे नफरत का भाव है, वहीं आम जन व उसके श्रम-सौंदर्य के प्रति अथाह प्यार है।

ये ग़ज़लें मानव जीवन की ग़ज़लें है। इसमें जीवन का अहसास घुला मिला है। इनमें प्रेम व करूणा है तो वहीं प्रतिरोध और अन्याय के प्रतिकार भी है। वे इन्हें स्वर देती है तथा व्यवस्था की विद्रूपता को उदघाटित करती है। कवि की समझ है कि यदि अन्याय का प्रतिकार नहीं हुआ तो अन्याय करने वालों का मनोबल बढेगा। अपने पर होने वाले जुल्म को सह जाना या उस पर मौन रहना अन्याय का साथ देने के समान है। उनकी ग़ज़ल में इस भाव का जो बिम्ब उभरता

है, वह कलात्मक उत्कृष्टता का नमूना है। ऐसे बिम्बों से इनकी शायरी भरी पड़ी है। यही उन्हें बड़े शायरों से जोड़ती है।''

सुशील कुमार का कहना है '' अदम गोंडवी के बाद जिस क्षमता और साहस के साथ ग़ज़लों के कंटेंट, शिल्प-संरचना, संप्रेषण-शक्ति और भाषागत परिवर्तन पर काम किया गया, उसमें श्री मिश्र का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है। उनकी ग़ज़लों का खास गुण उसकी रवानगी है, जो ग़ज़ल-भाषा के बोलचाल की भाषा के काफी करीब होने के कारण लक्षित होता है। मसलन उसे समझने के लिए 'डिक्शनरी' का सहारा नहीं के बराबर लेना पड़ता है। अतएव जनवादी ग़ज़लों की भाषा का जनभाषा में तब्दील होना एक बहुत जरूरी 'फैक्टर' है। कवि डी एम मिश्र ने आधुनिक हिंदी ग़ज़ल की दुनिया में जो हस्तक्षेप किया है , वह केवल रदीफ़ और काफिया के अनुशासन के कारण प्रतिक्रिया के योग्य नहीं है, बल्कि उसके कंटेंट भी उतनी ही चर्चा के काबिल हैं।

नए मुहावरों और कंटेंट के उदात्तीकरण के साथ जब मिश्र जी हिंदी ग़ज़लों में प्रवेश करते हैं तो उनकी ईमानदारी देखते ही बनती है । मिश्र जी ने ग़ज़ल की जो भाषा और शिल्प बरती है, उसके साथ ग़ज़ल का कंटेंट'कलाहीन कला'(आर्टलेस आर्ट) के साथ आकर जो समकालीनता रचती है, वह बहुत महत्वपूर्ण है।

अदम गोंडवी की तरह ही डी एम मिश्र की ग़ज़लों ने जनवादी ग़ज़ल की दुनिया में जो जमीन की निर्मिति की है, वह न केवल मौलिक और प्रामाणिक है, बल्कि जनविद्रोह के नए स्वर भी रचती है जिनमें आज की जिंदगी के संघर्ष की विकल आवाज़ है। हिंदी ग़ज़लों को लगातार ऊँचाईयों पर ले जा रहे और उसे लोकचेतना की सही जमीन से युज्य कर रहे डी एम मिश्र आज के एक महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं , यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं .''

शायर नसीम साकेती का कहना है '' डी एममिश्र के बहुचर्चित ग़ज़ल संग्रह 'आईना-दर-आईना' की ग़ज़लें ज़िन्दगी का आईना हैं। मिश्र जी अपनी प्रबल पर्यवेक्षण-शक्ति के माध्यम से अपने आसपास तथा समकालीन परिस्थितियों का अवलोकन करके ग़ज़लों का रूप देते हैं इनकी ग़ज़लें वास्तविकता, मौलिकता, सामाजिक सरोकारों, जीवन की तल्ख़ सच्चाइयों को रेखांकित करती हैं, समय से मुठभेड के साथ काव्यरस के जादू को बिखेरती हैं, सरलता, सहजता के साथ इनकी ग़ज़लों में अर्थबोध के दर्शन होते हैं।

डी एम मिश्र के ग़ज़ल संग्रह ''आईना-दर-आईना'' की ग़ज़लों में 'दुष्यन्त' तथा 'अदम' गोंडवी के तेवर भी मिलते हैं, जो उनकी संवेदनशीलता का परिचायक हैं यही कारण है कि उनके शेर सीधे

पाठक की मस्तिष्क शिराओं में बैठकर जज़्बातों को उद्वेलित कर देते हैं और शाश्वत सत्य के साक्षी बन जाते हैं।

डी एम मिश्र ने ग़ज़लों को नये अंदाज में कहने की कोशिश की है । उनमें इस बदलते बेचैन समय के प्रति चिन्ता भी है, जो इन ग़ज़लों को समकालीनता के साथ जोड़ती है । डी एममिश्र की ग़ज़लें बेहतर ज़िन्दगी की विशिष्ट संभावनाओं की तलाश करती हैं, इस तलाश में जीवन-मूल्य और जीवन के सम्बन्ध को नये सिरे से व्याख्यायित करती हैं और डी एम मिश्र को नई पहचान से नवाज़ती हैं।''

डॉ ०वीरेन्द्र त्रिपाठी ने 'आईना-दर-आईना' संग्रह की समीक्षा करते हुए लिखा है, ''109 ग़ज़लों का यह संग्रह जनजीवन की समस्याओं व विसंगतियों का आईना है। डी एम मिश्र का साहित्यिक सफर मीलों लम्बा है - श्री मिश्र बुनियादी रूप से परिवर्तन और आक्रोश के शायर है। श्री मिश्र अपने समय को बड़ी बारीकी से परखते हैं।

श्री मिश्र अपनी रचनाओं में न केवल युगीन यथार्थ को प्रकट करते हैं, बल्कि यथार्थ का मूल्यांकन कर बातों ही बातों में एक दिशा दे जाते हैं। समग्रतः श्री मिश्र की ग़ज़लों में कहीं मूल्यों के प्रति समर्पण है तो कहीं जीवन की विसंगतियों को उजागर करती प्रभावी रचनाएँ। कई प्रभावशाली बिंब मन की तलवटी पर अपनी छाप छोड़ने में समर्थ रहें हैं। हर रचना अपने विषय के दायरे में घूमती है, कहीं छटपटाती हैं और कहीं मंजिल के निकट आते-आते मुड़ जाती है। यथार्थ से गहरा नाता रखती व आशा से भरी समकालीन कृतियों का यह संग्रह कुल मिलाकर पठनीय व संग्रहणीय है।''

अंसार कंबरी ने लिखा है डी एम ०मिश्र आदर्शवादी संचेतना के कवि हैं लेकिन यथार्थ की अभिव्यक्ति करने में भी संकोच नहीं करते। अपनी ग़ज़लों में उन्होंनें भारतीय परिवेश की विसंगतियों को सटीक रूप में चित्रित किया हैं। निःसन्देह , उनका काव्य- कौशल सराहनीय एवं प्रशसंनीय हैं । उनकी रचनाओं में उनका समग्र व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है ।''

कमलनयन पाण्डेय ने लिखा है'' डी एम मिश्र की ग़ज़लों में हमारे समय का स्वर सुनायी पड़ता है। हमारे समकाल के समाज और जीवन के सवाल , मुद्दे और मसलें उभरते हैं जीवन के वास्तविक बिम्ब झलकते दिखायी पड़ते हैं । आम आदमी के सुख -दुख , हास - परिहास , आशा - निराशा, जय-पराजय, किल्लतें, फजीहतें, किचाहिनें ,बेचैनियाँ, सपने, आकांक्षाएँ, इरादे आदि की वास्तविकता को अभिव्यक्त करती हैं, इनकी ग़ज़लें। बाजारवादी शक्तियाँ नव्य तकनीक से

सज्जित संचार के ज़रिये जिस तरह से मोहक, मायावी, रंगीन, और स्वप्निल दुनिया परोस रही है, उससे हमारी मानवीय अस्मिता संकट में है ।

कमलनयन पाण्डेय आगे लिखते हैं"मिश्र जी की ग़ज़लों को पढ़ते हूए यह पता चलता है कि उनकी ग़ज़लें , ग़ज़ल के व्याकरण को साधने के फेर में उलझती नहीं , बल्कि जीवन के रंग और ग़ज़ल के रंग में परस्पर रसायन पैदा करती हैं। नतीज़न उनकी ग़ज़लें अपने पाठकों और श्रोताओं के साथ सहज तादात्म्य भी स्थापित कर लेती हैं। उनकी नज़रें अपने गिर्द की दुनिया के जीवन की हलचलों, गतिविधियों की ओर तैनात रहती हैं। वहीं से वे अपनी ग़ज़ल के विषय उठाते हैं। जीवंत शब्द गहते हैं । सम्भवतः इसीलिए उनकी ग़ज़लें अपने गिर्द की दुनिया की हालख़बर बनकर उभरती हैं। आम श्रोता-पाठक से बात-बतकही करती है।उनसे लुड़ियाती हैं।उन्हें टोकती ,टटोलती , कुरेदती और उकसाती हैं । उन्हंे सचेत करने के लिए चिढ़ाती भी हैं

कुल मिलाकर डी एम़ मिश्र की ग़ज़लें हमारे समय, समाज और जीवन की जड़ता को तोड़ने का रचनात्मक उपक्रम तय करती हैं । अपने समय की अप्रीतिकर स्थितियों ,अनुदात्ताओं और विद्रूपताओं के विरुद्ध खड़ी होती हैं, शोषक सत्ता के विरुद्ध शोषित जनता की पक्षधरता में खड़ी होती हैं । तटस्थता , ठहराव और उदासीनता को तोड़ती हैंऔर उनके बीच हलचल पैदा करती हैं।"

वरिष्ठ पत्रकार एवं कवि सुभाष राय ने कहा कि संग्रह को पढ़ने के बाद लगा कि श्री मिश्र आइना लेकर चलते हैं, जो खुद भी देखते हैं और दूसरों को भी दिखाते हैं। इस मायने में शीर्षक बहुत महत्वपूर्ण है। चेहरा बदलने का भाव भी नजर आता है। उनकी सामाजिक और राजनीतक चेतना अत्यंत प्रखर है इसीलिए वे राजनीतिक विद्रूपताओं पर लगातार हमले करते नजर आ रहे हैं। कहीं-कहीं ,एक ही कथ्य भिन्न आयाम लिए पेश हुआ है .... मिश्र जी शब्दों को अनावश्यक रूप से थोपते नहीं हैं।"

श्रीधर मिश्र कहते हैं, " डी एम़मिश्र की ग़ज़लें वाकई आइना-दर-आईना की तरह जिंदगी को पर्त-दर-पर्त देखने की जीवनदृष्टि लिए हूए हैं। ये ग़ज़लें मिट्टी और पानी से आदमी को पुल सरीखी जोड़ती हैं। इन ग़ज़लों में जीवन से किया गया आत्मीय सम्वाद बेहद प्रभावित करता है। कवि के पास सघन विचारदृष्टि है व विलक्षण अनुभवदृष्टि भी। जिसके बल पर वह जीवन की बहुविधि झांकी को अपनी ग़ज़लों में चरितार्थ कर सका है। कलात्मक संयम व सोद्देश्य कलात्मकता के सन्तुलित समन्वय ने इन शेरों को कहन व बनक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण बना दिया है। कवि डी एम़मिश्र में जो आलोचनात्मक चेतना है, वह उन्हें जीवन को समझने व परखने की अंतर्दृष्टि देती है। हालांकि तकरीबन एक सदी तक ग़ज़ल अपने स्थिर विषयवस्तु में महज

अंदाजेबयां के चलते अपनी चमक बनाये रखने में कामयाब रही।परन्तु इधर ग़ज़ल बड़ी जिम्मेदारी से अपने समय से सम्वाद कर रही है। अपने समय की तल्खियों, दुश्वारियों, पूंजीवादी साम्राज्य के चलते श्रम व श्रमिक की हो रही दुर्दशा जैसे लगभग सभी जीवन सन्दर्भों से आज ग़ज़ल बावस्ता है।''

प्रद्युम्न कुमार सिंह ने उनकी ग़ज़लों पर विस्तार से लिखते हुए कहा है ''बुनियादी तौर पर श्री मिश्र परिवर्तन और आक्रोश को अपनी गज़लों का विषय बनाते हैं और सच्चे साधक की तरह वह उस पर अडिग होकर खड़े मिलते हैं। मिश्र जी की गज़लें किसी भी बने बनाए खांचे में बंधकर नहीं चलतीं अपितु वे अपना रास्ता खुद चुनतीं हैं और उस पर चलती हुई जन समस्याओं के साथ खड़ी मिलती हैं। उनका मत और उद्देश्य बहुत स्पष्ट और साफ है कि उनकी ग़ज़लें जनसरोकारों के निमित्त हैं न कि आलोचकों की तहबज़ारी के लिए।श्री मिश्र मुश्किल समय की नब्ज़ टटोलने में सक्षम हैं और उनकी निर्भीक गज़लें मैदान छोड़कर भागने की अपेक्षा मैदान में डटे रहने में विश्वास करती हैं, उनकी गज़ल का यही जनोन्मुखी चेहरा उन्हें एक नया उत्साह और जुनून प्रदान करता है । जब लोग उसूलों और तहजीबों से भी समझौता करने में भी तनिक संकोच नहीं करते, ऐसे समय में श्री मिश्र उस अडिग चट्टान की तरह नज़र आते हैं, जो नदी के मुहाने पर खड़ा अपने अस्तित्व की चिंता किए बगैर अंतिम सांस तक प्रतिरोध करता हैं। उनका गज़ल संग्रह आईना-दर-आईना विद्रोह की इसी कड़ी को आगे बढ़ाती एक सम्यक रचना है ।

श्री मिश्र को बनी बनाई परिपाटी में चलना पसंद नहीं है। उनका मानना है कि किसी साहित्यकार की ताकत उसके लेखन का जनता से सरोकार है न कि मठाधीशी करते तथाकथित आलोचक स्वयंभू समीक्षकों की जुबान है जिसे मिर्च-मसाले के साथ वे अर्श से फर्श और फर्श से अर्श तक पहुंचाने की मुहिम में अनवरत शामिल रहते हैं, और इसी कारण उन्होने जनसाधारण की समस्याओं और उनके दुःख दर्द को अपनी गज़ल में स्थान दिया।'आईना-दर-आईना' की ग़ज़लों में प्रवेश करना अपने आप में एक अनुभव से गुज़रना है । ग़ज़लकार के पास भाषा बड़ी तरल और सरल पर पैनी है और मारक भी, जिसे हम चलते मानकों से व्याख्यायित नहीं कर सकते ० ० ० वह बहुत ही सादा और आम आदमी की ज़बान में चुभने वाली बात कहते हैं, वह भी ऐसे कि ग़ज़ल में कविता की आब बनी रहे !''

प्रोफेसर रामदेव शुक्ल ने संग्रह की ग़ज़लों से उसके शीर्षक 'आईना' की सार्थकता को लेकर सप्रमाण विस्तृत टिप्पणी की है- ''सुलतानपुर की उर्बर धरती से शायरी की दुनिया को सुवासित करते डी एम ०मिश्र के नवीन ग़ज़ल-संग्रह 'आईना-दर-आईना' का संपादन प्रख्यात कथाशिल्पी

संजीव द्वारा किया गया है। इस ग़ज़ल संग्रह का नामकरण भी संजीव का ही किया हुआ है । यह अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस संग्रह में पहले ही शेर की शुरूआत 'आईने ' से होती है-

आइने में खरोचें न दो इस क़दर
ख़ुद को अपना कयाफ़ा न आये नज़र

दूसरी ग़ज़ल में आईना इस शक्ल में आता है-

भेदे जो बड़े लक्ष्य को वो तीर कहाँ है
वो आइना है किन्तु वो तस्वीर कहाँ है

दसवीं ग़ज़ल का आईना नया तेवर दिखा रहा है-

पत्थर दिखा के उसको डराया नहीं जाता
वो आइना है उसको झुकाया नहीं जाता

पन्द्रहवी ग़ज़ल में आईना ताल ठोंक कर खड़ा है-

मेरे शेरों का क्या मेयार है वो क्या समझ पाये
वो ज़ालिम है मगर उसको भी आईना दिखाना है

सत्रहवीं ग़ज़ल में फंदा लगाकर जान दे देने वाला भी काली सियासत को आईना दिखाकर मरता है-

कौन कहता है कि वो फंदा लगा करके मरा
इस व्यवस्था को वो आईना दिखा करके मरा

बाइसवीं ग़ज़ल में हुस्न परस्ती का आईना है

तुम्हारे हुस्न के आगे हज़ारों चाँद फीके हैं
तुम्हारे हुस्न को ही देखकर हम आइना लाये

बत्तीसवीं ग़ज़ल आईना रखने वाले के लिए एक शर्त रख देती है-

पहले अपना चेहरा रख

फिर कोई आईना रख

चौंतीसवीं ग़ज़ल अंधों के हाथ में आईने की विडंबना रचती है-

आँखें रखने का है गिला हमको
अंधों ने आइना दिखाया है

इकसठवीं ग़ज़ल का आईना क्रूर यथार्थ का अक्स दिखा रहा है-

कैसा ये आईना है कैसी इसमें तस्वीरें
पत्थर पेट पे बाँध के बूढ़े रिक्शा खींचा करते

पचहत्तरवीं गज़ल में आईना ' शीशे 'के नाम से आकर दुनिया के सौन्दर्य को देखने की टेक्नीक बताता है -

दरिया का हुस्न छोटे से क़तरे में देखिये
दुनिया बड़ी हसीन है शीशे में देखिये

उन्यासवीं ग़ज़ल शायर की अपनी ग़ज़ल की वह खूबी बताती है जिसमें हर एक शख़्स को अपना घर परिवार दिखायी पड़े-

हर शख़्स को जिसमें अपना घर, अपना परिवार दिखायी दे
जो ख़ुद में इक आईना हो हम ऐसी ग़ज़ल सुनाते हैं

ज्यों की त्यों चदरिया को धर देने वाला कबीर का उजला दर्पण भी यहाँ है और उपभोक्तावाद की गुलाम बन गयी व्यवस्था को उसकी औकात दिखाने वाला आईना भी।''

डॉ ०राधेश्याम सिंह का कहना है कि ''डी एम मिश्र की ग़ज़लों से गुजरना समकालीन त्रासद संरचना से रू-ब-रू होना है। चतुर्दिक फैली असंगतियों के विरुद्ध, शब्दों की डफली पर जीवनराग गाता हुआ कवि किसी कलन्दर की तरह अपनी बात को पाठक के हृदय पटल पर सँजोता चला जाता है। ऐसा करते हुए डी एम मिश्र प्रतिमानों के आयतन में 'फिट' होने के व्यामोह से बचते हैं। उन की ग़ज़लें शब्द चयन के धरातल पर, गंवई स्पर्श से सम्प्रेषणीय बनती हैं और कही गयी बात बिना किसी बाधा के पाठक तक पहुँचकर उसे समृद्ध कर जाती है। खालिश उर्दू के शब्द, जिस तरह हिन्दीपट्टी के बोलचाल में रमे हुए हैं, उनके सटीक प्रयोगों ने मिश्र जी की

अभिव्यक्ति को सहजता प्रदान की है। नैतिकता की देशज समझदारी कवि को विशिष्ट बनाती है। यह कवि, समकालीन समाज में व्याप्त उस अँधेरे का उपभोक्ता है, जिसे व्यापक जन समुदाय भोग रहा है। ग़ौर करने लायक बात यह है कि कवि की जिजीविषा उस व्यापक जन समुदाय को अँधेरे से संत्रस्त होने से बचाती है, साथ ही उस अँधेरे की चीड़फाड़ का हौसला देती है ।''

एक लेख में कुमार सुशांत ने अदम गोंडवी और मिश्र जी की शायरी का तुलनात्मक अध्ययन यूं प्रस्तुत किया गया है,'' अदम गोंडवी के बाद डी एम मिश्र ने गाँव के विषय को पकड़ा है इसलिए अक्सर उनका नाम गोंडवी के साथ लिया जाता है। एक बात स्पष्ट कर दूँ कि डी एम मिश्र , अदम गोंडवी नहीं हो सकते । कोई किसी का स्थान नहीं ले सकता। हर व्यक्ति अपने ढंग का अकेला व्यक्ति होता है। अगर कोई किसी की नकल करने की कोशिश करता है तो वह खुद ही खारिज हो जाता है। इस बात को स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि डी एम मिश्र ने अदम गोंडवी की तरह अपनी ग़ज़लों में गाँव को विषय के रूप में लिया है लेकिन दोनों की दृष्टि में अंतर है। दोनों गाँव को अलग-अलग नजरिये से देखते हैं। दोनों का गाँव अलग है। दोनों के समय मे भी अन्तर है। केवल यही कहा जा सकता है कि डी एम मिश्र ने उस 'सब्जेक्ट' को लिया है , जिसकी जरूरत अदम को महसूस हुई थी।

आज के गाँव की समसामयिक स्थिति का वर्णन डी एम ०मिश्र ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से किया है। गाँव में अब भी गरीबों का शोषण व अत्याचार होता है । उत्थान तो केवल गाँव के मुखिया का होता है-डी एम मिश्र का समय अदम गोंडवी उर्फ रामनाथ सिंह से आगे का समय है, इसलिए उन्होंने 'मनरेगा' पर क़लम चलाई है। 'मनरेगा' का मुद्दा अदम के समय नहीं था। कागज पर नहरों में पानी है लेकिन ज़मीनी हकीकत कुछ और ही है। यहाँ डी एममिश्र गाँव की समस्याओं को उठाते हुए अफसरशाही की पोल खोलते दिखाई देते हैं। अदम गोंडवी भी गाँव की समस्याओं को उठाते हुए अफसरशाही की पोल खोलते हैं। उन्होंने लिखा है-
तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आंकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी हैं

अदम गोंडवी और डी एम मिश्र दोनों ही गाँव की समस्याओं को लेकर ग़ज़ल में आते हैं। दोनों में यही समानता और एकरूपता है। दोनों के समय में अंतर होने के कारण समस्याओं में भी अंतर दिखाई देता है। मेरी नजर में अदम की परंपरा के ग़ज़लकार डी एम मिश्र हैं। समकालीन होने के कारण जहां दोनों एक ही विषय पर लिखते हैं, वहाँ दोनों के कहन में अंतर दिखाई देता है। दोनों अपने-अपने ढंग से समस्याओं को उठाते हैं। दो लोग एक तरह के हो नहीं सकते और

होना भी नहीं चाहिए । यह बात यहाँ भी देखने को मिलती है। डी एम मिश्र में अदम गोंडवी की नकल या 'कॉपी' नहीं दिखाई देती। एक तरफ अदम गोंडवी प्रधान के लिए कड़े शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखते हैं-

जितने हरामखोर थे कुर्वा जवार में
परधान बनकर आ गए अगली कतार में

वहीं दूसरी तरफ डी एम ०मिश्र तंज़ और व्यंग्य की शैली में कहते हैं-

गाँवों का उत्थान देखकर आया हूँ
मुखिया का दालान देखकर आया हूँ

डी एम़ मिश्र के यहाँ भी मुखिया है। यहाँ भी गाँव का प्रधान है पर दोनों के कहन का अपना-अपना अंदाज है। कहन का यही अंतर दोनों को अपनी अलग पहचान दिलाता है।

विधायक की करतूत को उजागर करते हुए अदम लिखते हैं-

काजू भुने पलेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है राम राज विधायक निवास में

डी एममिश्र भी विधायक की करतूत को उजागर करते हुए लिखते हैं -

गाँव की ताजी चिड़ियाँ भून के प्लेट में रखी जाती है
फिर गिद्धों की दावत चलती पुरुषोत्तम के कमरे में

अदम के समय में विधायक निवास में शराब पीना ही कठिन काम था। लेकिन मिश्र जी के यहाँ विधायक निवास में कई गिद्ध मिलकर लड़की का 'गैंग रेप' कर रहे हैं । उसकी इज्जत तार-तार कर रहे हैं।

अदम के यहाँ गाँव की लड़की से दुराचार सुनसान और निर्जन जगह पर होता है । उन्होंने लिखा है-

होनी से अनभिज्ञ कृष्णा बेख़बर राहों में थी
मोड़ पर घूमी तो देखा अजनबी बाहों में थी
चीख निकली भी तो होठों में ही घुट कर रह गई
छटपटाई पहले फिर ढीली पड़ी फिर ढह गई

डी एम़ मिश्र के यहाँ लड़की के साथ दु़राचार कई लोगों के सामने होता है। अदम के यहाँ लड़की का 'रेप' होता है लेकिन डी एम़ मिश्र के यहाँ 'गैंग रेप' होता है। यह समय के अंतर और भारतीय समाज के मू़ल्यों में आयी गिरावट को दर्शाता है।''

और अंत में छंदाचार्य एवं शायर नागेन्द्र मिश्र मणि ने जो सम्मति दी है वह उल्लेखनीय है। वे कहते हैं ''डी एम मिश्र जदीद शाइरी और हिन्दी ग़ज़ल के बेहतरीन शायर है । इनके शिल्प में अनु़भूतियों की आत्माभिव्यक्ति के साथ समाज की बहु़आयामी चेतना की निष्पति तो है ही साथ ही साथ वह समय और समाज के अन्तर्विरोधों , आर्थिक विषमताओं , विद्रूपताओं , विसँगतियों व सांस्कृतिक विडम्बनाओं पर चिंतन के रूप प्रवाहित वाग्धारा भी है ऐसा मैं मिश्र जी के ग़ज़ल सँग्रह-आईना -दर -आईना का आस्वादन करते हु़ए अनु़भव किया हूँ । सामाजिक विसँगतियों का बेबाकी से पर्दाफाश किया गया है । सामथर््य हीन किसानों व मजदूर तबके की स्वाभाविक पैरोकारी देखते ही बनती है । ग़ज़लों में प्रयु़क्त बिम्बों व प्रतीकों मे आत्मिक सँवेदना का विस्तार अत्यन्त गहन है। शायर की दृष्टि समाज मे व्याप्त नाना प्रकार की गतिविधियों पर बनी हु़ई है । उनकी ग़ज़लों मे वह विद्रोहपन झलकता है जो अदम गोडवी और दु़ष्यंत की ग़ज़लों में है । या यँू कहें श्री मिश्र जी जनवाद की उस परम्परा को आगे बढाने में कामयाब हु़ए हैं । श्री मिश्र जी की ग़ज़लों मे जहाँ कटु़ यथार्थ की सँवेदनात्मक अभिव्यक्ति है, वही आदर्शों का आग्रह भी कम नहीं है । उनके एहसास थोथे और बाह्य न होकर अभ्यंतर से प्रतिध्वनित प्रतीत होते हैं तथा वे अपनी ग़ज़लों मंे मानवता के सर्वाेच्च भाव से संयु़क्त होकर जीवन मू़ल्यों को सशक्त धरातल प्रदान करते हैं। उनकी ग़ज़लें बु़द्धि से ज्यादा ह्रदय के निकट है । ह्रदय में बसे प्रेम और सौंदर्य के बूते न केवल जिन्दगी के गमो और खु़शियों को बल्कि विद्रोह और इंकलाब के विचारांे को भी उन्होने ग़ज़ल की विधा में उसी नजाकत के साथ सशक्त और प्रभावशाली तरीके से ढाला है । उनकी ग़ज़लें , ग़ज़ल के व्याकरण बहर ,रदीफ , काफिये के पैमाने. पर भी खरी उतरती हैं ।''

उपर्यु़क्त विद्वानों के विचारों के आलोक में हम उनके चु़निन्दा अशआर का विश्लेषण करते हैं ताकि उनकी रचनाधर्मिता को और विस्तार से समझा जा सके। सबसे पहले उनके आत्मकथ्य के रूप में आए कु़छ शेर प्रस्तु़त हैं, जिनमें मिश्र जी ने अपने लेखकीय सरोकार स्पष्ट किए हैं-

प्राणों में ताप भर दे वो राग लिख रहा हूँ
मैं प्यार के सरोवर में आग लिख रहा हूँ

दुनिया है मेरी कितनी यह तो नहीं पता, पर
धरती है मेरी जितनी वो भाग लिख रहा हूँ

सब लोग मैल अपनी मल-मल के धो रहे हैं
असहाय साबुनों का मैं झाग लिख रहा हूँ

अथवा

ग़ज़ल मेरी ताक़त, ग़ज़ल ही जुनूँ है
जो गूँगे थे उनकी जुबाँ बन गया मैं

अथवा

प्यार मुझको भावना तक ले गया
भावना को वन्दना तक ले गया

मैं न साधक हूँ , न कोई संत हूँ
शब्द को बस साधना तक ले गया

वास्तव में 'शब्द को साधना तक ले जाना' ही एक रचनाकार का अभीष्ट होता है। यहांँ ग़ज़लकार ने जीवन के अभावों को स्वयं भोगा है और पाया है कि वर्तमान समाज जड़ और असमान सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक स्थितियों में संलिप्त है, जो आम आदमी के दुखों का मूल कारण है। वे इसके प्रमाण पेश करते हैं, देखिए-

जनता ने तो चाहा था लेकिन परिवर्तन कहाँ हुआ
चेहरे केवल बदल गये , पर कहाँ भ्रष्ट सरकार गई

हमारे गाँव में खींची गयी रेखा ग़रीबी की
फिरे दिन इस बहाने हुक्मरानों के , दलालों के

तुम्हारी फ़ाइलों में दर्ज क्या है वो तुम्हीं जानो
लगे हैं ढेर मलवे के यहाँ टूटे सवालों के

मिलती नहीं ग़रीब को इमदाद कहीं से
इस मामले में चुप है मेरा संविधान तक

वे जानते हैं कि आज शासक वर्ग बहूत चालाक हो गया है।देश में बढ़ती अराजकता और व्यवस्थागत असंतुलन के लिए वही जिम्मेदार है। वे सरकार की गलत नीतियों पर तंज करने से

कभी ग़ुरेज नहीं करते । तभी तो उन्होंने राजनीतिक विकृतियों और विसंगतियों को यूँ उजागर किया है-

सब सियासी ताक़तें हाथों में उनके आ गयीं
लोफ़रों - गुंडों से ज़्यादा अब कोई क़ाबिल नहीं

तेरे जुल्मो - सितम से अब तनिक भी डर नहीं लगता
तेरे ख़ंजर से मेरे खून का रिश्ता पुराना है

वे मानते हैं कि समाज में बढ़ती इस आर्थिक असमानता से समाज में उन्नति नहीं हो पा रही है-

घर -घर बिजली पहुँच गयी है ये दावा भी झूठा है
बहुत घरों में अब भी जलती वही टीन की ढिबरी है

उनका मानना है कि कोई समाज कितना ही सम्भावनाशील हो लेकिन जिसमें लोगों का जीना दूभर हो रहा हो, मजदूर, किसान, दलित, आदिवासी सभी त्रस्त हों, वहां विकास या प्रगति के दावों के क्या मायने हो सकते हैं-

देश की धरती उगले सोना वो भी लिखो तरक़्क़ी में
आधा मुल्क भूख में सोता वो भी लिखो तरक़्क़ी में

हमारा अन्नदाता किसान आज भी अपना खून-पसीना एक कर अन्न उपजाता है, किन्तु हर समय अभावों में जीवन व्यतीत करता है। कवि ने उनके इस त्रासद जीवन को बहुत नजदीक से देखा है तभी वह कह पाया है कि-

खेती में जो पैदा किया वो बेचना पड़ा
बच्चों को अब खिला रहा कंकड़ उबालकर

चूंकि ग़ज़लकार की पृष्ठभूमि गांव से है अतः भारतीय किसान की अभावग्रस्त और बदहाल जिन्दगी ने उसे बहुत संवेदनशील बनाया है तभी इसका मार्मिक वर्णन इनकी ग़ज़लों में बार-बार मिलता है। भारत ग्रामप्रधान देश है उसकी अधिकांश जनता गांवों में रहती है। ग्राम्यजीवन को केन्द्र में रखते हुए देश को समझना होगा-हमारे देश में भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है. लाखों किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हैं. बढ़ते स्वार्थ और

अनैतिकताओं से आदमी को इतना नीचे गिराया जा रहा है कि वह मनुष्य के रूप में जी भी न सके। जो जी रहे हैं वो विकृत मानसिकता के साथ अलगाव का शिकार हो रहे हैं। हर बार नई सरकारें यह कहकर गरीबों के लिए, भूखों के लिए नए सपने और नई सौगात लाती है कि इस बार तो अच्छे दिन जरूर आ जायेंगे। लेकिन भूख और गरीबी दोनों अपनी जगह निरुत्तर बनी हुई हैं लेखक भूख और गरीबी के परिणामों को उन्होंने एक ग़ज़ल में इस प्रकार व्यक्त किया है। गांव में बढ़ती गरीबी भुखमरी का चित्रण उन्होंने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है,देखिये-

मैं जहाँ जाता हूँ मेरे साथ जाती है ग़रीबी
मेरे दामन से लिपटकर मुस्कराती है ग़रीबी

भूख में भी , प्यास में भी गुनगुनाते ,गीत गाते
दो टके पर चार पुरसा कूद जाती है ग़रीबी

वो अँधेरी रात पूरे हौसले से कट गयी
एक बीड़ी , चिलम से भी हार जाती है ग़रीबी

पेट भरने का ग़रीबी रास्ता सब जानती है
दाल कम पड़ती है तो पानी बढ़ाती है ग़रीबी

गाँव से शहर की ओर पलायन रुक नहीं रहा बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा है-

गॉव में रहना कोई चाहे नहीं
धूप में जलना कोई चाहे नहीं

आज भी मजदूर की जीवन स्थितियां वैसी ही दयनीय बनी हुई हैं। इस स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए कवि कहता है-

महीने भर का बच्चा माँ की ममता को तरसता है
मगर माँ क्या करे दफ़्तर से जब छुट्टी नहीं पाती

विडम्बना यह है कि पीढ़ी दर पीढ़ी मजदूर की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है-

उसे जो मिल गया था बाप-दादा से विरासत में
अभी तक वो बिछौना है , वही कंबल पुराना है

भूमंडलीकरण के रूप में बाजारवाद ने हमारी सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का तनस नहस कर दिया है इसका वर्णन इन ग़ज़लों में खूब हुआ है-

कहीं छलकते हैं सागर तो कहीं प्यास ही प्यास
तेरे निज़ाम में इतनी बड़ी कमी क्यों है

यह पूरी गज़ल इस लोकतंात्रिक व्यवस्था को कटघरे में ला खड़ा करती है-

वोटरों के हाथ में मतदान करना रह गया
दल वही, झंडे वही कांधा बदलना रह गया

व्यवस्था के रग-रग में फैले भ्रष्टाचार ने पूरे समाज को दुर्बल कर दिया है, जिसकी इकाई के रूप में हम सब शामिल हैं।न्याय आम आदमी की पहुँच से दूर होगया है...कवि यह सत्य जान गया है कि शोषण विरोधी चेतना के अभाव के कारण ही आमजन पर अत्याचार बढ़ रहे हैं-
सुनता नही फरियाद कोई हुक्मरान तक
शामिल है इस गुनाह में आलाकमान तक

जिन्हें अन्याय की बातों में न्याय दिखता है
वही इन्साफ़ की कुर्सी पे जमे बैठे हैं

यह शेर देश की इस पतनशील राजनीतिक व्यवस्था की ओर संकेत करता है, जहां जनता के रहनुमा ऐयाशियां कर रहे हैं -

गांव की ताज़ी चिड़िया भून के प्लेट में रखी जाती है
फिर गिद्धों की दावत चलती पुरुषोत्तम के कमरे में

महानगरीय जीवन में आवास की समस्या पर भी यह मार्मिक शेर देखें-

किसी फ़ुटपाथ पर जीना , किसी फ़ुटपाथ पर मरना
कहाँ जाये न इसके घर ,न कोई आशियाना है

इसी तरह निरंतर बढती हुयी महँगाई ने आज आम आदमी का जीना दूभर कर दिया है। उनके दुख तकलीफ देखकर कवि स्वार्थ, मुनाफा और शोषण पर केन्द्रित बाजार पर चोट करता है, देखें-

ग़रीबों की मदद करता वो है धर्मात्मा लेकिन
बिना चन्दा लिये कम्बल , रजाई कुछ नहीं देता

दुकाँ छोटी हो लेकिन दोस्तो बैनर बड़ा रखना
भले कुछ भी नहीं करना मगर बातें बड़ी करना

इस लूटतंत्र में वे सत्ता, व्यापारी और भ्रष्ट नौकरशाह के त्रिकोण को न केवल जिम्मेदार मानते हैं बल्कि लोकतंत्र के लिए खतरनाक भी मानते हैं।

राजनीतिक स्वार्थ हेतु राष्ट्रीयता, संस्कृति व देशभक्ति का प्रचार किया जाता है, वहीं सरहद पर असंख्य सैनिक मारे जा रहे हैं। इस अंधराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता पर उन्होंने गहरी चोट की है -

देशभक्ती के नारे गढ़े जा रहे
सरहदों पे सिपाही कटे जा रहे

मौत का मंज़र हमारे सामने था
थरथराता डर हमारे सामने था

मेरे घर से कभी मेहमां मेरा भूखा नहीं जाता,
मेरे घर में ग़रीबी रहके मुझ पे नाज़ करती है

जो हमारे क़त्ल की साज़िश में था कल
दोस्त अब बनकर हमारे सामने था

आज की राजनीति का सत्तालोलुपता और छल स्वभाव बन गया है। इसीलिए सरकार चुनने के लिए हमारी चुनाव व्यवस्थामें अनेक खामियों उभर आई हैं।उन पर कवि की नजर जाती है-

कल तो दिखलाया गया था सब्ज़बाग़
और अब मक़तल में लाया जा रहा

फिर चुनाव की मंडी में मतदाताओं का दाम लगा
फिर बिरादरीवाद चला एकता देश की हार गई

बरसों से इन चुनावी वादांे को सुनकर जनता का मोहभंग हो चुका है।वे इस मोहभंग के यूं राज खोलते हैं कि उनका असली चेहरा बेनकाब हो जाता है।आज नेता कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं-

करें विश्वास कैसे सब तेरे वादे चुनावी हैं
हक़ीक़त है यही सारे प्रलोभन इश्तहारी हैं

हमें गुंमराह करके क्या पता वो कब निकल जाये
बड़ा वो आदमी है क्या ठिकाना कब बदल जाये

यहाँ इस भ्रष्ट और विसंगत राजनीति की चीरफाड़ खूब मिलती है।और वे राजनीति के इस घिनौने खेल का निर्ममता से पर्दाफाश करते हैं-

इलाके का वो नेता है इलाके में नहीं आता
उसे दिल्ली के आगे अब दिखायी कुछ नहीं देता

मगर हुआ इस बार भी वही हर कोशिश बेकार गई
दाग़ी नेता जीत गये फिर भोली जनता हार गई

जनता के दुःख दर्द के प्रति नेताओं का उपेक्षा भाव कवि को कचोटता है-

अपराधियों में कल तलक उसका शुमार था
अब कर्णधार मंत्रियों में देखिये उसे

सुविधाभोगी मध्यवर्ग के दोगलेपन का व्यंग्य के माध्यम से यहां जमकर व्यंग्य किया गया है। देखें-

संगमरमर पर बिछा कालीन हो
धूल में चलना कोई चाहे नहीं

विकास के नाम से जो दिखावा हो रहा है और आदमी के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो रहा तब कवि कहता है। प्रत्येक व्यक्ति की खुशहाली से ही विकास को नापा जाना चाहिए न कि बड़े बड़े नगर और वहां की लंबी -चौड़ी सड़कों से-

भूखें हैं लोग बात सितारों की हो रही
फसलें हमारी और हैं सपने हमारे और

वे इस समय के मायावी यथार्थ की पड़ताल करते रहते हैं। बाजार और पूंजीवाद की निर्ममता बढ़ रही है और न्यायतंत्र, पत्रकारिता और मीडिया मूकदर्शक की तरह खड़े हैं। औद्योगीकरण ने हाथों से रोजगार छीन लिया है-

आदमी को ही जो कर दें बेदखल
उन मशीनों को लगाया जा रहा

इस यांत्रिकता की वजह से जीवन की सहजता, रसमयता और आत्मीयता नष्ट हो रही है। आत्मीय सम्बंधों के बीच मुनाफा जब घर कर जाये तब उस समाज का क्या हश्र होगा-

हमें बेटा नहीं बनिये की पूँजी मानता है वो
हमारी हर तरक्की में मुनाफ़ा माँगता है वो

धनसंस्कृति के इस दौर में आज आत्मीय सम्बन्धों का महत्व नहीं रह गया है।आज सम्बंध केवल स्वार्थ और धन केन्द्रित हो गए हैं ।ऐसे में प्रेम से जुडे उनके शेर उल्लेखनीय हो जाते हैं-

जाड़े की सुबहें थीं , धूप के गलीचे थे
बचपन के ख़्वाबों में रेत के घरौंदे थे

सारा दिन हिर फिर कर तितलियाँ पकड़ते थे
पंखों से नाजुक वो नर्म -नर्म लम्हे थे

सूरज की किरणों का ओढ़ना , बिछौना था
ममता का आँचल था , बापू के गमछे थे

सितारों के नगर में चाहता तो मैं भी बस जाता
पर , अपने गाँव से नाता कभी तोड़ा नहीं मैंने

तेरे बंद शहर में अपने गाँव की गलियाँ ढूँढ रहा
चने - बाजरे की रोटी की लज़्ज़त जाने कहाँ गयी

यही प्रेम हमें क्रान्ति और परिवर्तन की प्रेरणा देता है।उनका यह शेर उनके सम्पूर्ण काव्य व्यक्तित्व का आइना बन कर निर्भीकता से कहता है-

कभी लौ का इधर जाना, कभी लौ का उधर जाना
दिये का खेल है तूफ़ान से अक्सर गुज़र जाना

और यह भी देखिए-

खिली धूप से सीखा मैंने खुले गगन में जीना
पकी फसल में देखा मैंने खुशबूदार पसीना

निर्भीकता कवि का स्वाभाविक गुण बन गया है । तभी तो ये शेर दमनकारी शक्तियों पर जोरदार चोट करते हुए नहीं डरते हैं। वे परिवर्तन के प्रयासों में रचनाकारों का आह्वान भी करते हैं-

कौन कहता है कि वो फंदा लगा करके मरा
इस व्यवस्था को वो आईना दिखा करके मरा

ज़ुल्म से लड़ने को उसके पास क्या हथियार था
कम से कम गुस्सा तो वो अपना दिखा करके मरा

ख़त्म उसकी खेतियाँ जब हो गयीं तो क्या करे
दूर तक भगवान की सत्ता हिला करके मरा

सुन ऐ जालिम अब वो तेरे ही गले की फॉस है
वो सियासत में तेरी भूचाल ला करके मरा

एक मौलिक और क्रान्तिकारी कवि में प्रतिरोध का साहस, संघर्ष का हौसला उसकी प्रकृति बन जाती है। डी एम मिश्र उनमें से एक हैं-

है ज़माने को ख़बर हम भी हुनरदारों में हैं
क्यों बतायें हम उन्हें हम भी ग़ज़लकारों में है

बहुत अच्छा हुआ जो सब्ज़ बाग़ों से मैं बच आया,

ग़नीमत है मेरे छप्पर पे लौकी अब भी फलती है

समाज की उन्नति और बढ़ते अत्याचार के लिए वह स्वयं को भी जिम्मेदार मानते हैं। अपने सरोकारों के प्रति वे सदैव प्रतिबद्ध रहे हैं-

कत्ल कल्लू का हुआ तब, मूकदर्शक हम भी थे
हमको क्यों माफ़ी मिले , हम भी गुनहगारों में हैं

देश में जैसे सन्तों की बाढ़ आ गयी
बन के बाबा वो सबको ठगे जा रहे

आतंकवाद भारत ही नहीं विश्व की समस्याओं में से एक हैं । घृणा द्वेष बढ़ता जा रहा है-

पुरख़तर यूँ रास्ते पहले न थे
हर कदम पर भेड़िये पहले न थे

इन्सान के कपड़े पहन के आ गया शैतान
बेशक मिलाना हाथ उससे पर सँभालकर

आपसी एकता और सद्भाव इस हत्यारे समय में नियति की किसी भी बर्बरता से हार न मानने की ज़िद हमें उनके ग़ज़लकार के मर्म और धर्म के प्रति आश्वस्त करती है-

आज धर्म अनेक तरह की विकृतियों का शिकार है .स्वार्थ का उसे साधन बना दिया गया है

इस अशांत और भयपूर्ण समय में जब हिंसा ,साम्प्रदायिकता अलगाववाद और आतंकवाद से हमारा देश जूझ रहा है और जिससे इसका विकास अवरुद्ध बहुत आवश्यक है और यह प्रेम और सहिष्णुता से ही संभव है-

इन्सानों को सबसे ज्यादा ख़तरा इन्सानों से है
हँसकर खूब मिले तो समझो साजिश कोई गहरी है

समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता की समस्या एवं उससे उत्पन्न विकृतियों को अपनी ग़ज़लों में व्यंग्यात्मकता के साथ व्यक्त किया है। धार्मिक संकीर्णता को इसका एकमात्र कारण माना है। यह संवेदनहीनता मनुष्य के संवेदनहीन होते जाने की त्रासदी को अभिव्यक्त करती है-
सुबह से शाम तक जो खेलते रहते हैं दौलत से

उन्हें मालूम क्या मुफ़लिस की क्या होती है दुश्वारी

नौजवान बड़ी उम्मीद से पढ़ता लिखता है कि उसे नौकरी मिलेगी और वह बड़ों का सहारा बनेगा लेकिन बेरोज़गारी धीरे से उसे दिशाहीन बना देती है-

सहारा था उन्हें बनना , सहारा ढूँढते हैं वो
कहीं का भी नहीं रखती जवाँ बच्चों को बेकारी

चूंकि इन ग़ज़लों का मुख्य ध्येय व्यवस्था परिवर्तन है, अतः वे इन ग़ज़लों को परिवर्तन का अस्त्र बनाना चाहते हैं। इसके लिएवे मध्यवर्ग की काहिली पर भरपूर प्रहार करते हैं-

बुझे न प्यास तो फिर सामने नदी क्यों है
मिटे न धुंध तो फिर रोशनी हुई क्यों है

गरीब आदमी तो कोशिशें कर-कर के थका
नसीब उसका बदल दो तो कोई बात बने

आवाज़ों को सुनसानों तक ले जाने दो
कुछ पानी रेगिस्तानों तक ले जाने दो

वे इस व्यवस्था को समाप्त करना एक चुनौती की तरह स्वीकार करते हैं.

अमीरी है तो फिर क्या है हर इक मौसम सुहाना है
ग़रीबों के लिए सोचो कि उनका क्या ठिकाना है

इस ग़ज़ल के अनेक मर्मस्पर्शी शेर हैं । शोषण के खिलाफ जंग जारी है। आम आदमी आज और अधिक कष्टप्रद जीवन जी रहा है ...

महानगर में विस्थापन की समस्या है कि लोग जिंदगी भर फुटपाथ पर गुजार देते हैं-असंख्य लोग गाँव से शहर आकर अपना जीवन फुटपाथ पर व्यतीत कर रहे हैं ...मिश्र जी ने घर की समस्या पर बेहतरीन शेर कहा है -

किसी फ़ुटपाथ पर जीना , किसी फ़ुटपाथ पर मरना
कहाँ जाये न इसके घर ,न कोई आशियाना है

शौक़िया कुछ लोग चिल्लाने के आदी हो गये
पर, यहाँ अफ़वाह फैली लोग बाग़ी हो गये।

महफ़िलों में आ के खुददारी बयाँ करते रहे
पर , सरे बाज़ार बिक जाने को राज़ी हो गये।
ये ग़ज़लें हमें सचेत करती हैं-

ओ मेरे तालाब की भोली मछलियो सावधान
ये वही बगुले हैं जो कहते हैं त्यागी हो गये

साहस और हिम्मत का संदेश देता यह शेर-

आग का जो दरिया देखा तो पहले डर से काँप उठा
मगर तैर कर पार गया तो आगे मानसरोवर था

यह बहूत बड़ी बात कही है कि जो मां-बाप अपने संरक्षण में चलना नहीं सिखाते हैं वे बच्चे रास्ते भटक जाते हैं और लड़खड़ाते रहते हैं-

बड़े होकर वो बच्चे ज़िंदगी भर लड़खड़ाते हैं
जिन्हे माँ-बाप बचपन में नहीं चलना सिखाते हैं।

मेरे शेरों का क्या मेयार है वो क्या समझ पाये
वो ज़ालिम है मगर उसको भी आईना दिखाना है।

यह देश गरीबों का भी है पैसे वालो
कुछ उनके भी अरमानों तक ले जाने दो

इस देश में सब कुछ है अगर यह बताइये
इस देश में मज़लूम की तकदीर कहाँ है

हमारी छान पर कोई मकाँ नम्बर नहीं होता
तुम्हें आसान होगा बस हमें बेनाम लिख लेना।

हरेक बात का उत्तर वो हाँ में देता है
अजीब चीज़ ज़माने में जी - हुज़ूरी है

जब-जब धर्म के उदात्त स्वरूप का क्षरण होता है तब-तब राजनीति ने इसका दुरुपयोग किया है, इसे समझते हुए कवि आपसी भाईचारे और मानवता की रक्षा के लिए आह्वान करता है क्योंकि आपसी एकता और सद्भाव, प्रेम और सहिष्णुता से ही यह संभव है-

आदमी ही आदमी के काम आता दोस्तो
आदमी से बढ़ के कोई दूसरा होता नहीं

इसीलिए उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से साझा संस्कृति व भाईचारे की भावना को प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया है-

नम मिट्टी पत्थर हो जाये ऐसा कभी न हो
मेरा गाँव, शहर हो जाये ऐसा कभी न हो

उनके अनेक शेर पढ़ने के बाद लगा कि उनकी बस यही कामना है कि-

मेरे देश में कोई भूखा न सोये
ये छोटी -सी पूरी ज़रूरत करोगे

और कविता ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है, इसी मनुष्यता या संवेदना को लेकर कवि प्रश्न करता है-

कविता में तेरी छंद- अलंकार बहुत हैं
कविता में आदमी की मगर पीर कहाँ है

वो बड़े शायर थे शहरों में रमे
गाँव के दुख-दर्द तो हम ही लिखे

ग़ज़ल कहने चले हो तो तग़ज़्ज़ुल भी ज़रूरी है
ग़ज़ल में बस मिला दें क़ाफ़िया ऐसा नहीं होता

उनकी यह टिप्पणी बड़ी मार्मिकता से आई है-

मिट्टी का जिस्म है तो ये मिट्टी में मिलेगा
एहसास हूँ मैं कौन मुझे दफ़्न करेगा

सूई ने कब कहाँ सिलाई की
धागे को रास्ता दिखाया है

मनुष्य का आत्मसम्मान उसके जीवन से अधिक कीमती होता है। इसके लिए वह मरने मारने पर उतारू हो जाता है-

मुहब्बत टूट कर करता हूँ, पर अंधा नहीं बनता
ख़ुदा से भी मैं अपने प्यार एकतरफ़ा नही करता

इनामों और तोहफ़ों की ज़रूरत ही नहीं समझी
कटोरा हाथ में लेकर कभी माँगा नहीं मैंने

व्यंग्य के पुट ने इस शेर को और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है-

उनको भला हम क्या कहें जो सोचते नहीं
उनकी ज़ुबान गिरवी है वो बोलते नहीं

देश में जैसे सन्तों की बाढ़ आ गयी
बन के बाबा वो सबको ठगे जा रहे

मिश्र जी का आक्रोश इन ग़ज़लों में और मुखर होकर उतरा है । इनका आवेग इनकी गहरी संवेदनशीलता का परिचायक है। कभी-कभी ये जनता की सोई चेतना को झिंझोड़ देते हैं। दरअसल ये ग़ज़लें पूरे आत्मविश्वास के साथ लिखी गयी हैं। इसीलिए ये शेर उनकी संघर्ष चेतना के पुख्ता सबूत देते हैं-

अँधेरा है घना फिर भी ग़ज़ल पूनम की कहते हो
फटे कपड़े नही तन पर ग़ज़ल रेशम की कहते हो

ग़रीबों को नहीं मिलता है पीने के लिए पानी
मगर तुम तो ग़ज़ल व्हिस्की गुलाबी रम की कहते हो

यह एक सशक्त ग़ज़ल है क्योंकि इसमें धारदार व्यंग्य के साथ संवाद का निर्वहन हुआ है। वे आगे कहते हैं-

ग़ज़ल ऐसी कहो जिससे कि मिट्टी की महक आये
लगे गेहूँ में जब बाली तो कंगन की खनक आये

मेरे घर भी अमीरी चार दिन मेहमान बन जाये
भरे जोबन तेरा गोरी तो शाख़ों में लचक आये

नज़र में ख़्वाब वो ढालो कि उड़कर आसमाँ छू लें
जलाओ वो दिये जिनसे सितारों में चमक आये

श्रम और सौंदर्य का अद्भुत मेल उनके कई शेरों में देखने को मिला। आप भी देखें जैसे-

बोझ धान का लेकर वो जब हौले हौले चलती है
धान की बाली कान की बाली दोनों संग - संग बजती है

वे ऐसी कविता को बिल्कुल नहीं मानते जो जनता को जगाती नहीं और सत्ता को उकसाती नहीं है।इन ग़ज़लों में जनता से जुड़ाव है, यथार्थ की उपस्थिति है और संघर्षचेतना की उर्जा है। ग़ज़ल की सार्थकता और महत्व के प्रति चिंता व्यक्त की है-

बढ़ो ऐसे कि जैसे चाँदनी बढ़ती चली जाये
किसी को काटकर बढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगता

जीवन की अदम्य शक्ति की घोषणा करता उनका यह शेर, संग्रह का सर्वश्रेष्ठ शेर बन पड़ा है-

कभी लौ का इधर जाना , कभी लौ का उधर जाना
दिये का खेल है तूफ़ान से अक्सर गुज़र जाना

अपने संघर्षपूर्ण जीवन में उन्होंने आस्था और आशा की तलाश सदैव की है क्योंकि वे मानते हैं कि यही जीवन संघर्षों में शक्ति के रूप में साथ रहती है-

लंबी है ये सियाहरात जानता हूँ मैं
उम्मीद की किरन मगर तलाशता हूँ मैं

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मिश्र जी की चिन्तन की जड़ें अपने परिवेश से जुडी हैं. उन्होंने इन ग़ज़लों में अपने परिवेश को बड़ी ईमानदारी और गहराई से चित्रित किया है। अर्थात

उनकी ये ग़ज़लें आज के यथार्थ और भोगे हुए कड़ुए सत्य को उद्घाटित करने वाली जीवन्त रचनाएं हैं। यथार्थ यहाँ ज्यों का त्यों नहीं आया है बल्कि उसे भरपूर तग़ज़्ज़ुल से संवारा गया है। अपने समय से संलग्नता प्रत्येक श्रेष्ठ कवि की पहली शर्त होती है। मिश्रजी ऐसी छोटी-छोटी संलग्नताएं अपने शेर के कथ्य के लिए तलाश ही लेते हैं,जो उनकी सचेतनता व सजगता का सबूत पेश करती हैं।अपनी ग़ज़लों के द्वारा वे अभिव्यक्ति के नए से नए इलाके की तलाश करते दिखाई देते हैं। चूंकि उनकी ये जनोन्मुखी ग़ज़लें हैं,इसलिए इनके केंद्र में आमआदमी का जीवन और उसकी संघर्षचेतना साफ दिखाई देती है। इन ग़ज़लों में किसान, मजदूर तथा वंचित समाज का दर्द पूरी शिद्दत से व्यक्त हुआ है। ग्राम्यजीवन की दारूण स्थिति पर यहां कमाल के शेर आए हैं।इन शेरों में ग्राम्य-जीवन के प्रश्न, उसकी तकलीफें और संघर्ष का आँखों देखा हाल बयान किया गया है। मिश्र जी की स्मृतियों के केन्द्र में आज भी गांव है। उनके पास वहां का परम्पराबोध है,वहां का मूल्यबोध है। इसी बोध की अभिव्यक्ति के लिए मिश्र जी ने एक नई लोक भाषा ईजाद की है, जो साधारण आदमी से बात करती है।उन्होंने अपनी ग़ज़लों को भाषाई जटिलता से सदैव दूर रखा है। उर्दू व अंग्रेजी शब्दों का उन्होंने बहुत सटीक और असरदार प्रयोग किया है।उन्होंने कुछ अनूठे रदीफ भी प्रयोग किए हैं -'पुरुषोत्तम के कमरे में' 'वह विधायक है' ऐसा कभी न हो' यह खबर अच्छी नहीं' 'देखकर आया हूं'आदि, आदि।यदि गहराई से देखें तो उनकी ग़ज़लों के प्रत्येक शेर में एक आवेग-सा उपस्थित रहता है।कहीं -कहीं तो यह आवेग मानवीय सम्वेदना के उत्कर्ष तक पहूंच जाता है और ये ग़ज़लें अपने समय और समाज की सफलताओं और असफलताओं की गवाह बन कर पेश हो जाती हैं।ये गज़लें हमें सवाल करना ही नहीं, जवाब देना भी सिखाती हैं। हम पाते हैं कि कवि को जब अपने सवालों का जवाब नहीं मिलता तो शब्दों के तेवर तीखे,सपाट और विद्रोही हो जाते हैं।इस तेवर में आक्रोश भरा होता है, जो सामाजिक विसंगति पर चोट करता है। उनकी ग़ज़लों के इस गहन आत्म संघर्ष को विस्तार से समझना होगा।

उनकी ग़ज़लें हमें हिन्दी ग़ज़ल के बदले हुए मिजाज से भी परिचित कराती हैं।हिन्दी ग़ज़ल में आज का युगसत्य हमारे जीवन का यथार्थ दस्तावेज बनकर उपस्थित हुआ है।ये गज़लें इस अँधेरे समय में हमें जगाती हैं जिस जागरण के मूल में शोषण के खिलाफ मानवीय मुक्ति का पक्ष है. मिश्रजी ने भी वर्तमान परिवेश की पीड़ा, तड़प, व्याकुलता, अकुलाहट और आक्रोश को अपनी ग़ज़लों का मुख्य स्वर बनाया है। उन्होंने सामाजिक समस्याओं का वर्णन बड़ी प्रमाणिकता के साथ किया है तथा जनसाधारण की पीड़ा को बड़ी सूक्ष्मता से रेखांकित किया है।ये ग़ज़लें वैचारिक दृष्टि से काफी उन्नत और परिपक्व हैं,जो पाठक के मन को उद्वेलित करती हैं।

अर्थात ये युगबोध से परिपूर्ण हैं।इनसे वर्तमान भारतीय राजनीति के स्वरुप का परिचय भी मिल जाता है । ये ग़ज़लें इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को प्रश्नों के कटघरे में खड़ा करती हैं। इस तरह वे नज़ीर अकबरावादी की परम्परा के कवि हैं। उन्होंने समकालीन राजनीति की गहरी परख की है। वे देश की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर बारीक नजर रखते हैं। इनकी ग़ज़लें समाज, राजनीति और व्यवस्था के आसपास घूमती हैं। दरअसल, मिश्र जी की ग़ज़लों ने अपना पक्ष चुन लिया है और वे जनता के पक्ष में खड़ी हैं। उनके दुःख -सुख के साथ बावस्ता हैं और उन के संघर्ष में भागीदार हैं।

वे ग़ज़ल के शिल्प के प्रति बहुत सचेत रहते हैं । उन्हें उर्दू बहरों पर कमाल का अधिकार है। उन्होंने लगभग प्रत्येक ग़ज़ल को उसकी बह्र में कसा है ...अर्थात ये मंजी हुयी ग़ज़लें हैं। अच्छा शेर सहज भाव, स्पष्ट भाषा और उपयुक्त छंद के सम्मिलन का नाम है। एक भी कमी से वह रसहीन और बेमानी हो जाता है। काव्य की अस्पष्टता व अवास्तविकता शेर को कहीं का रहने नहीं देती है। संप्रेषणीयता के गुण के कारण ही हिन्दी ग़ज़ल पाठकों से सहज रूप से जुड़ गयी है। वास्तव में वे इसी मिजाज के ग़ज़लकार हैं। इनके पास अपने समय और परिवेश को समझने की सूक्ष्म दृष्टि है,जहाँ सामाजिक समस्याएं हैं वहां उनके कारणों पर तीखा व्यंग्य भी किया है। एक एक्टिविस्ट की तरह वे सदैव सक्रिय रहकर सर्वहारा वर्ग के प्रति प्रतिबद्ध ग़ज़लकार के रूप में गरीबों, मजदूरों व किसानों के त्रासद जीवन का चित्रण करते हुए वे उन्हें विद्रोह के लिए जगाते भी हैं और सत्तानशीन लोगों को उनकी जिम्मेदारियों का बोध भी कराते हैं।.

आशय है कि ये उनकी ऊर्जावान ग़ज़लें हैं। ये ग़ज़लें हिन्दी में लिखी जा रही आम ग़ज़लों से अलग हैं। इनमें अभिव्यक्ति की नवीनता स्पष्ट दिखाई देती है। आज के समय में ग़ज़ल-भाषा, अभिव्यक्ति के सारे दायरे तोड़ चुकी है। इनकी ग़ज़लों की भाषा जनसाधारण की भाषा ही है, जिसमें हिन्दी और उर्दू का सहज लहजा निर्मित हुआ है। इनकी भाषा मुहावरेदार है जो आत्मीय लगती है।

अब ग़ज़ल की कहन में बहुत से नये विषय, नये शब्द और नये लहजे के प्रयोग हो रहे हैं, जो इसे और व्यापक और समृद्ध बना रहे हैं। डी एम ०मिश्र के यहां सामाजिक चेतना प्रारम्भ से ही बहुत प्रखर रही है,जिससे उन्होंने अपनी ग़ज़लों से हिन्दी ग़ज़ल को नये-नये आयाम दिये हैं। चूंकि वे अभी सतत रचनारत हैं और आश्वस्त हुआ जा सकता है कि वे नये शिखर छुयेंगे, अतः कहा जा सकता है कि वे हिन्दी के एक प्रतिनिधि ग़ज़लकार हैं।

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें